प्रस्तावना

जैन सिद्धान्तों और मन्तव्यों का व्यापक प्रचार न होने के कारण कतिपय यूरोपीय और भारतीय विद्वानों में जैन धर्म और उसके उपदेष्टाओं के सम्बन्ध में अनेक भ्रान्तियाँ फैली हुई हैं। भगवान् महावीर पर मांसाहार का आरोप भी इसी प्रकार की एक भ्रान्ति है, जो आगम में आये हुए द्व्यर्थक शब्दों का यथार्थ अर्थ न समझने के कारण उत्पन्न हुई है।

अहिंसा के परमोपदेष्टा, करुणा के अवतार भगवान् महावीर किसी भी परिस्थिति में मांसाहार का सेवन करें यह नितान्त असंभव है। जैन धर्म के प्राथमिक अनुयायी, सम्यक्त्वी या श्रावक गृहस्थ के लिए भी मांसाहार अवश्यमेव वर्जनीय है फिर साधुओं के लिए तो कहना ही क्या है? भगवान् महावीर के द्वारा उपदिष्ट मांसाहार-निषेध की परम्परा आज ढाई हजार वर्ष से अबाध रूप से चली आ रही है।

श्री धर्मानंद कौशाम्बी द्वारा लिखित तथा साहित्य एकादमी द्वारा प्रकाशित 'भगवान् बुद्ध' पुस्तक में भगवान् महावीर के मांसाहार विषयक प्रकरण को देखकर जैन समाज क्षुब्ध हुआ है। इस भ्रान्त धारणा के निराकरण हेतु भूतपूर्व जैनाचार्य, वर्त्तमान में श्रमणसंघ के उपाध्याय पं. मुनि श्री १००८ श्री आनन्दऋषिजी म. सा. ने यह सुन्दर एवं युक्तिसम्मत निबन्ध लिखा था जो "जैन प्रकाश" के २३-११-४४ के अंक से आरम्भ होकर ७-६-४५ तक के अंकों में क्रमशः प्रकाशित हुआ था। उस निबन्ध को संशोधन पूर्वक शृङ्खलाबद्ध पुस्तकाकार में प्रकाशित करना अत्यन्त आवश्यक मान कर यह प्रकाशन किया जा रहा है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आशा है, इस लेख के द्वारा भ्रान्ति का निराकरण होगा और विद्वान् गण निष्पक्ष भाव से जैन धर्म को उसके सही रूप में देखने का प्रयास करेंगे।

निवेदक

जैनधर्म प्रसारक सभा, नागपुर

कार्यालयः—पाथर्डी (अहमदनगर)

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

जैन दर्शन और मांसाहार में पारस्परिक विरोध

मंगलाचरण

हठाग्रहग्रस्तान्, दुर्बोधविषमूर्च्छितान् ।
सज्ज्ञानतन्त्रमन्त्राभ्याम् पान्तु वीरान्घ्रिरेणवः ॥१॥

भावार्थ—जिस समय जीव कुग्रहों से ग्रस्त हो जाते हैं, उस समय विद्वानों की भी बुद्धि नष्ट हो जाती है, नहीं करने योग्य कामों के करने में प्रवृत्ति करने लगते हैं और नहीं बोलने योग्य बातों को बोलने लगते हैं, वे जीव सत्पुरुषों के लिए अनुकम्पनीय होते हैं। विषभक्षण करके मूर्च्छित प्राणियों को जिस तरह कुछ भान नहीं रहता है, उसी तरह दुर्बोध अर्थात् ज्ञानशून्य, अथवा दुर्बोध यानी गुरु परम्परा से समागत जो सज्ज्ञान उससे शून्य, अतएव दुर्बोधरूपी विषसे अज्ञान में पड़े हुए प्राणी भी सत्पुरुषों के लिए अनुकम्पनीय होते हैं इन दोनों प्रकार के प्राणियों की रक्षा सम्यग्ज्ञान रुपी तन्त्र और मन्त्र के प्रयोग से श्रीभगवान् महावीर प्रभु के चरणों की धूलियाँ करें। अर्थात् जिस तरह श्रीवीर प्रभु ने अनेक अज्ञानियों को सद्बोध देकर इस भवसागर से पार किया है; उसी तरह आज भी कितने ही जीव ऐसे हैं जो गुरु परम्परा से सद्बोध प्राप्त नहीं किये हुए हैं,अतएव दुर्बोध से आपके आगमों का यथार्थ अर्थ न समझकर "स्वयन्नष्टः, परान्नाशयति अर्थात् खुद तो

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

नष्ट हो ही चुके हैं परन्तु साथ साथ दूसरों को भी नष्ट कर रहे हैं। इस न्याय से साधारण प्राणियों के हृदय में संदेह पैदा कर रहे हैं, उनको वीर प्रभु सद्बुद्धि प्रदान करें। वे हठाग्रही प्राणी संयमी सद्गुरु से उन आगमों का रहस्य समझ कर अपना कल्याण कर लें।

यह बात प्रमाण सिद्ध है कि व्याकरण, काव्य, तर्क आदि विद्याओं के द्वारा शब्दार्थ करने की पूर्ण शक्ति संपादन कर लेने पर भी जब तक तत्-तत् धर्मों के निष्णात गीतार्थ गुरु के पास उन धार्मिक ग्रथों के रहस्य को समझने का अधिकारी नहीं हो सकता। धार्मिक ग्रन्थों के रहस्य का ज्ञान तो दूर रहे, साधारण ग्रंथों का तथा व्यवहार में आने वाले साधारण वाक्यों का भी तत्व नहीं जान सकता।

प्राचीन एक उदाहरण है; व्याकरण, कोष आदि षट् शास्त्र के ज्ञाता एक विद्वान् थे उनकी नासिका के भीतरी भाग में एक फोड़ा हो गया, अनेक औषधोपचार करने पर भी पीड़ा दिनों दिन बढ़ती ही गयी। किसी भी वैद्य की दवा ने काम नहीं किया। उसी ग्राम में वृद्ध अनुभवी संस्कृत के साधारण ज्ञाता एक वैद्य रहते थे, लोगों के द्वारा उनकी प्रशंसा सुनकर रुग्ण पण्डितजी उनके पास पहुँचे और अपनी वेदना सुना कर रोगोपचार की जिज्ञासा व्यक्त की। वैद्यजो ने समझा कि पण्डितजी तो व्याकरण, काव्य, कोष आदि संस्कृत विद्या के पारंगत व्यक्ति हैं, संस्कृत शब्दों में इनको दवा का उपदेश कर देना चाहिये। वैद्यजी ने उपदेश कर दिया कि "रोगेऽस्मिन् भूयोभूयो गणिकापुष्पमाघ्रातव्यमिति सुगमोपायः। वनस्पति के प्रकरण में गणिका नाम है जूही का, उसके फूल को बारम्बार सूंघने से नाक का रोग शांत हो जाता है। यह आसान उपाय है यह वैद्यजी का अभिप्राय था। रुग्ण पण्डितजी

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

ने गणिका का अर्थ वेश्या और पुष्प का अर्थ आर्तव लगा कर उसकी तलाश में घूमने लगे। इस व्यवहार शून्य पण्डित को इतना भान नहीं हुआ कि ऋतुधर्म के समय जिस अपवित्र आर्तव स्राव के कारण स्त्री का स्पर्श करना भी लोक और शास्त्र से विरूद्ध है, उस आर्तव को नासिका के द्वारा सूंघने का उपदेश कोई विवेकी विद्वान किसी पवित्र व्यक्ति को कैसे कर सकेगा ?

इसी तरह संस्कृत विद्या के एक प्रौढ विद्वान् ज्वर रोग से पीड़ित होकर किसी सद्वैद्य के पास गये। वैद्यजी ने उपदेश किया कि आप तीन रोज तक "कण्टकारि" का काढ़ा पीजिये। कण्टकारि वनस्पति विशेष का नाम है जिसको हिन्दी में भटकटइयां और मराठी में रिंगणी कहते है। उसका काढा पीने से ज्वर शांत हो जाता है, वैद्यक शास्त्र और कोष के अनभिज्ञ पण्डितजी ने समास करके उसका अर्थ सिद्ध किया कि कण्टकस्य अरिः कण्टकारिः अर्थात् "जूता" का काढा करके पीना चाहिये।

बस ! ये दोनों उदाहरण उन पण्डितमानियों पर लागू होते हैं। जो लोग जैनागम तत्ववेत्ता पुरुषों की उपासना तथा वैद्यक. कोष और व्यवहार का अध्ययन नहीं करते हुए प्रचलित शब्दों पर से मच्छ का अर्थ मछली, मंस का अर्थ मांस (गोश्त) कवोय का अर्थ कबूतर, कुक्कुड का अर्थ मुर्गा और मज्जार का अर्थ बिलाव करते हैं। उन पण्डितों को इतना भी विवेक पैदा नहीं होता है कि जिन पवित्र जैनागम और जैन धर्म के ग्रंथों में स्थान २ पर जैन मुनियों पर ऐसा प्रतिबंध लगाया गया है कि जहां पर मत्स्यमांस का संसर्ग भी जानने में आवे वहां जाना नहीं, और मन से भी मद्य मांसादि अभक्ष्य पदार्थों का चिंतन नहीं करना। ऐसे पवित्रात्मा साधुओं को सिर्फ एक स्थल पर मत्स्य-मांस लेने का

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

विधान भगवान् ने किस तरह किया ? और स्वतः भगवान् ने भी इस अभक्ष्य पदार्थ का सेवन किस प्रकार किया होगा ?

अतः "व्याख्यानतो विशेष प्रतिपत्तिर्नहि सन्देहादलक्षणम्" इस परिभाषा के अनुसार शास्त्र के अर्थ में जहां पर संशय उत्पन्न हो, वहां शिष्ट पुरुषों के द्वारा की हुई व्याख्या से विशेष अर्थ का निश्चय करना चाहिये। शास्त्र में संशय उत्पन्न होने पर वह अलक्षण अर्थात् अमान्य नहीं होता है। और भी इस बाबत में महर्षि मनुजी कहते हैं कि "आर्षं संदर्ध त न तु विघ येत्" अर्थात् महर्षियों के वाक्यों को जोड़ना चाहिये, किन्तु तोड़ना नहीं। इसी तरह उपनिषद् और स्मृतियों को वेदान्त से विरुद्ध जाती हुई बहुतसी बाह्य विसंगतियां देखकर श्रीशकराचार्य सरीखे प्रखर-तार्किक नैयायिक ने स्वकीय ब्रह्मसूत्र शंकर भाष्य में लिखा है कि "तस्मात्तदविरोधेन वेदान्ता व्याख्यातव्या" अर्थात् श्रुति स्मृतियों का विरोध न हो, इस प्रकार वेदान्त को व्याख्या करनी चाहिये। इसी न्याय का अनुसरण अपने को भी करना चाहिये। धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों से बाह्यदृष्टि से विरुद्ध जाने वाली विचार-सरणीका पाठकों तथा विचारकों को इस रीति से विचार करना और घटाना चाहिये कि वह विचार-सरणी मूलभूत सिद्धांतों की घातिका नहीं होती हुई पोषिका बने और सहारा दे। सारांश यह है कि आगमों में एकाध स्थलपर बाह्यदृष्टि से जो धर्म आचार व्यवहार और प्ररूपणा से विरुद्ध अर्थ भासित हो रहे हैं, उनके लिये सुसंगत अर्थ की अन्वेषणा करनी चाहिये। परन्तु ये विचार पैदा कैसे हो ? अनुभवी प्राचीन नीतिज्ञ पुरुषों ने तो पहले ही लिख दिया है कि—

देवीं वाचमुपासते हि बहवः सारं तु सारस्वतम्,
जानीते निलरामसौ गुरुकुलक्लिष्टो जनः सज्जनः ॥

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

अब्धिर्लंघित वीरवानर भटैः किन्त्वस्य गम्भीरता,
मापातालनिमग्नपीवरतनुर्जानाति मन्थाचलः ॥ १ ॥

सारांश—ग्रंथों को और शास्त्रों को अनेक लोग पढ़ते हैं—उनका अर्थ भी कर लेते हैं, परन्तु उनका रहस्य वही जान सकता है जो गीतार्थ गुरु के पास रहकर तत्वार्थ जानने के लिये अतुल परिश्रम किया हुआ हो। जैसे लंका में जाते समय वानरों ने सेतु के द्वारा समुद्र का उल्लंघन कर डाला, परन्तु समुद्र कितना गहरा है, यह पता उनको कहां? समुद्र को गहराई का पता मन्थाचल पर्वत को है कि जिसका स्थूल शरीर पाताल तक चला गया है। परमार्थ इसका यह हुआ कि जैनागम शब्दों का रहस्य कितनेक स्थलों पर बड़े २ जैनाचार्यों को भी अवगत नहीं होता है। उस स्थल पर गुरु परंपरा से प्राप्त अर्थों को दिखला कर आगे "तत्वं तु केवलिगम्यं" अर्थात् तत्व यानी इसका रहस्य तो केवली (त्रिकालज्ञ और सर्वज्ञ) भगवान् ही जानते हैं ऐसा कहकर छोड़ देते हैं। ऐसी अवस्था में जो व्यक्ति जैनागम रहस्यवेदी गीतार्थ, गुरुओं की सेवा पर्युपासना के द्वारा आगमों का यथावत् अध्ययन नहीं करता है केवल प्रचलित शब्दार्थ लेकर जैनागम और जैन संस्कृति को दूषित करने का प्रयास करता है तो उससे बढ़कर दूसरा दुस्साहस कौन कहलायेगा? यदि किसी विवेकी विद्वान् पुरुष ने गुरु परम्परा से शास्त्रार्थ ग्रहण नहीं किया सिर्फ अपने बुद्धि बल से उसका अर्थ करने की इच्छा रखता है तो वह बहुत सोच विचार के साथ अपना कदम आगे बढ़ता है, एकदम साहस नहीं करता। कहा है:—

न पंडिताः साहसिका भवंति, श्रुत्वापि ते संतुलयंति तत्वम्।
तत्वं समादाय समाचरन्ति, स्वार्थं प्रकुर्वन्ति परस्य चार्थम् ॥

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

सारांशः—विद्वान् पुरुष किसी भी स्थान पर एकदम साहस नहीं करते। कोई बात कहीं पर सुनी या पढ़ी, तो वहां पर तत्वकी तुलना करते हैं। और तत्वको ग्रहण करके इस प्रकार आचरण करते हैं कि जिससे अपने और दूसरों के अर्थ में विरोध पैदा न हो।

ऊपर लिखे हुए लेखसे यह बात सिद्ध हो चुकी कि जिन्होंने गुरुमुख से शास्त्रों का अध्ययन नहीं किया है, वे शास्त्रीय शब्दों का अर्थ करने के लिये अधिकारी नहीं है। गुरुमुख से शिक्षण लिया भी हो, परंतु गुरुसंप्रदाय शुद्ध न हो, अथवा पढ़ने वाले में विवेक ही न हो तो भी वह सर्वथा अनधिकारी ही होता है।

अब यहांपर विशेष चेतावनी अपनी समाज के व्यक्तियों को दी जाती है कि जैनागम रहस्यसे शून्य किसी भी अजैन या जैन व्यक्ति ने किसी किस्म का झूठा आक्षेप उठा दिया हो तो उस पर अपन भडक कर उसका निराकरण करने के लिये चारों तरफ से एक आवाज उठा देते हैं यह बात विशेष अंश में ठीक नहीं है, क्योंकि आक्षेप उठाने वाले तीन प्रकार के व्यक्ति होते हैं (१) "अज्ञानी" जिसने गुरु परम्परा से आगमों का अर्थ संपादन नहीं किया है, उसका निराकरण इतने ही शब्दों में हो सकता है कि जैनागमों का ज्ञान तुमने कहां से संपादन किया है? अगर किसी गुरु से ज्ञान प्राप्त नहीं किया तो तुम इस आवाज को उठाने के लिये अयोग्य हो। पहले जैनागम रहस्य को संपादन करो।

(२) दूसरे व्यक्ति वे हैं जिन्होंने ज्ञान प्राप्त कर लिया है, परंतु उनका ज्ञान अधूरा है, एक भी शास्त्र का आद्योपान्त अभ्यास नहीं हुआ है उसमें भी हठाग्रह है, उनके साथ भी वाद विवाद करना-उनके आक्षेपों का उत्तर देना निरर्थक ही है। कहा भी है—

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

अन्तः सारविहीनस्य सहायः किं करिष्यति ।
मलयेऽपि स्थितो वेणु र्वेणुरेव न चंदनः ॥ १ ॥

अर्थात् जिसका अंतःकरण सार शून्य है, उसके लिये कोई उपाय नहीं है, जैसे मलय नामक पर्वतपर नीम वगैरह सभी वृक्ष चंदनवत् सुगंध युक्त हो जाते हैं, परंतु वेणु (बांस) में सुगंध का असर नहीं होता। क्यों कि उसके अंदर कुछ सार नहीं है। इस तरह वेणुवत् निस्सार व्यक्तियों के साथ वाद विवाद से कुछ लाभ होने की संभावना नहीं है.

(३) तीसरे दर्जे के व्यक्ति वे हैं जो बहुश्रुत हैं परंतु उनके पास विवेक नहीं है. उन लोगों के साथ भी वाद विवाद करना मानो अपने अमूल्य समय का दुरुपयोग करना है। कहा भी है कि–

यस्य नास्ति विवेकस्तु केवलं तु बहुश्रुतः ।
न स जानाति शास्त्रार्थं दर्वी पाकरसं यथा ॥ १ ॥

अर्थात् जिस तरह कुर्छी सभी पदार्थों को चलाने फिराने का काम करती है परंतु किसी वस्तुके स्वादको नहीं जानती, उसी तरह कितनेक व्यक्ति खूब पढे लिखे हैं, दूसरों को पढ़ाते भी हैं, परंतु कुडछी के समान शास्त्र रहस्य से अनभिज्ञ ही हैं। ऐसे पुरुषों से वाद विवाद करने में कुछ लाभ नहीं है–

शायद आप लोग कहेंगे कि उन वादियों ने अपना लेख संसार भर में जाहिर कर दिया है, अगर हम लोग चुप रह जायेंगे तो हमारी महत्ता में हानि होगी, तो यह भी समझ ठीक नहीं है, एक कविने कहा है कि—

गिरिशिखरगतापि काकपंक्तिः पुलिनगतैर्न समत्वमेति हंसैः ॥

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

अर्थात् कौओंकी कतार पर्वत के शिखर पर बैठी हो और हंसकी कतार नीचे तालाव के किनारे पर बैठी हो, तो भी कौवे हंस कहला सकते हैं क्या ? कदापि नहीं। इसी तरह मांसाहारियों के आक्षेपयुक्त वचन से निरामिष, सात्विक और प्रासुक आहार को ग्रहण करनेवाला जैन समाज मांस भोजी की कोटि में कदापि नहीं आ सकता।

मांसाहारियों के आक्षेपों का उत्तर इसके पूर्व में श्वेतांबर जैन समाज के बड़े बड़े धुरंधर विद्वानों ने कई बार दे दिया है, अब उसकी आवश्यकता कुछ भी नहीं थी, परंतु संघ यदि आग्रह कर रहा है तो संघका सम्मान रखना अपना कर्तव्य होता है, इस दृष्टि से गुरु परम्परा से जो कुछ ज्ञान मुझे प्राप्त हुआ है, उसको संघ सेवा के लिये तथा अर्ध विदग्ध वादियों को सद्बोध कराने के लिये यहाँ उद्धृत कर देना अपना कर्तव्य समझता हूँ।

शास्त्रार्थ समन्वय करने के पहले इस बातको निवेदित कर देना उचित है और पाठकों को भी इधर पूर्ण ध्यान रखना चाहिये वह बात यह है कि भगवान् वीर प्रभुके आगम अर्थागम हैं, अर्थात् प्रभु अपने उपदेशों को अर्द्धमागधी भाषा में फरमाते हैं, वह भाषा मनुष्य पशु-पक्षी देव आदि तत्तद् जीवोंकी भाषा में परिणत हो जाती है। सभी जीव अपनी २ भाषामें भगवान् के उपदेश को ग्रहण करते हैं, इतनो ही विशेषता नहीं प्रत्युत अधिक चमत्कृति की बात यह है कि भगवान के शब्द तो एक ही निकलेंगे, परन्तु एक ही जाति के जीव अपने २ ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के क्षयोपशम के अनुसार भिन्न २ तरह से समझते हैं. अतएव श्री तत्वार्थ सूत्र के अन्दर "बहु बहुविध क्षिप्रानिश्रितासन्दिग्धध्रुवाणां सेतराणाम्" अर्थात् बहु बहुविध क्षिप्र अनिश्रित असंदिग्ध और ध्रुव ये ६ और इनके प्रतिपक्षी अबहु, अबहुविध, अक्षिप्र, निश्रित

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

सन्दिग्ध और अध्रुव ये इस तरह बारह भेद मतिज्ञान के बतलाये गये हैं और मतिज्ञान तथा श्रुत ज्ञान का अभेद सम्बन्ध माना जाता है।

भगवान् के उसी अर्थागमको गणधर लोग शब्दागम रूपमें गुम्फित कर लेते हैं, उसमें भी वही चमत्कृति है अर्थात् जो जीव जितने अंश में ज्ञानावरणीयादि कर्मों का क्षयोपशम करता है, उसको उसी प्रकार का अर्थ भासित होता है। आर्य वचन भी ऐसे हैं कि " एगस्य सुत्तस्स अनंतो अत्थो " अर्थात् एक एक सूत्र के अनन्त अर्थ हैं, जब अनन्त अर्थ इस आगम में पड़े हुए है तो चोर कहीं पर चोरी का अर्थ ग्रहण करे, जार कहीं पर जारी का अर्थ ग्रहण करें और मांसाहारी कहीं पर मांस अर्थ ग्रहण करे तो कुछ आश्चर्य की बात नहीं है। आश्चर्य की बात तो तब होगी जब कि ज्ञातपुत्र भगवान के सदाचारी संतानों में कुछ विषमता उपस्थित हों। भगवान के सन्तानों में भी शब्दार्थ के विषय में विषमता पैदा होने की संभावना अवश्य है। कारण कि सभी जीवों के क्षयोपशम बराबर नहीं है। अपनी २ बुद्धि, धारणा और गुरुपरम्पराके अनुसार सामान्य विशेष रूप से शब्दार्थ किये जाते हैं। जैसे हिंसा शब्द एक ही है, इसका अर्थ कोई करते हैं—प्राणिवध; और कोई अर्थ करते हैं—पीडा। यदि पीडा अर्थ भी लिया जाय, तो भी आपाततः वध अर्थ चला ही आया। सारांश यह हुआ कि शब्दार्थ में किसी अंश में फर्क तो पड़ने ही वाला है, मूलतत्त्व में अंतर नहीं होना चाहिये। इतना नम्र निवेदन करके अपने प्रकृत वक्तव्य स्थल पर आता हूं।

पं० धर्मानन्द कोशाम्बी नामक बौद्ध पंडितजी ने जो श्री दशवैकालिक सूत्र, श्री आचारांग सूत्र के किसी अंश को लेकर सूत्रार्थ के अभिप्राय को न समझ कर जैन समाज में मांसाहार

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

सिद्ध करने की चेष्टा की है और उस पर से श्वेतांबर जैन समाज में खलबली मची है, यह जैन सम्प्रदाय की एक प्रकार को भूल है। क्यों कि यह पुरानी प्रथा चली आ रही है कि व्यभिचारिणी स्त्री अपनी बराबरी में लाने के लिये सती और साध्वी स्त्रियों पर झूठा व्यभिचार का आरोप किया करती है। परन्तु सत्य और झूठ में दिन रात का अन्तर है। अगर कोई मांसाहारी अपनी अल्पज्ञता के कारण भगवान् के आगमों का रहस्य न समझकर अपनी समकक्षा में लाने के लिये जैन जनता को भ्रम में डाल रहा है, इससे जैन समाज मांसाहारी नहीं सिद्ध हो सकता। जैन समाज की पवित्रता और इनकी अहिंसा, दया, मद्यमांसादि का त्याग सारी दुनिया में प्रसिद्ध है, इस विषय में जैन धर्म की बराबरी करने वाला जगत में आज कोई भी नहीं है यह बात कहने में जरासो भी अत्युक्ति नहीं होगी। यह बात प्रमाण सिद्ध है कि बीज के बिना अङ्कुर कभी नहीं उत्पन्न हो सकता और जब बीज है तब सहकारी कोरण-कदम्ब मिलने पर अङ्कुर आये सिवाय रह नहीं सकता। आज भगवान् महावीर प्रभु को निर्वाण हुये २४७० वर्ष हो गये, उनके समय से आज तक भिन्न २ जैनाचार्यों के द्वारा हजारों ग्रंथ तैयार हुवे हैं। परन्तु किसी भी ग्रंथ में या आगमों की टीकाओं में मांसभक्षण का विधान नहीं मिलता क्यों कि इसका बीज ही नहीं है फिर अङ्कुर कहां से पैदा हो ?

भगवान् महावीर और भगवान् बुद्ध ये दोनों समकालीन माने जाते हैं। भगवान् बुद्ध ने अहिंसा का उपदेश दिया सही परंतु "पर निष्पादित" अर्थात् दूसरों से सिद्ध किये हुये मांस भक्षण के लिये उन्होंने अथवा उनके पश्चात् आचार्यों ने अपने अनुयायियों को छूट दी। अतः आज तक धारा प्रवाह से मांस भक्षण की रूढ़ि बौद्ध धर्म में चलो आ रही है, जो अहिंसा की प्ररूपणा को लजाने वाली है। बात बहुत लिखनी है, परन्तु बुद्धिमान् को इशारा काफी

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

है इस न्याय से जिन सूत्रों के आधार परसे कोशाम्बीजी ने जैन समाज में मांसाहार सिद्ध करने का प्रयत्न किया है उस विषय को लेता हूँ। कोशाम्बीजी ने पहले प्रमाण में श्री दशवैकालिकसूत्र की ये गाथाएँ दी हैं—

बहुअट्ठियं पोग्गलं, अणिमिसं वा बहुकंटयं।
अत्थिअं तिंदुअं बिल्लं, उच्छुखंडं व सिंबलिं॥
अप्पे सिया भोयण जाए, बहुउज्झिय धम्मिए।
दिंतिअं पडिआइक्खे, न मे कप्पइ तारिसं॥

अ० ५ उद्देश १ गा. ७३-७४

इन गाथाओं का कोशाम्बीजी ने अपनी मनोहारिणी! बुद्धि द्वारा यह अर्थ लगाया है कि बहु अट्ठियं अर्थात् बहुत हड्डी वाला 'पोग्गलं' अर्थात् मांस, तथा बहु कंटयं अर्थात् बहुत कांटे वाला 'अणिमिस' अथात् मछली "अत्थिअं-अस्तिक वृक्ष का फल, "तिंदुअं-तिंदुक वृक्ष का फल, बिल्लं-बेलवृक्ष का फल, उच्छुखंड-ईख का टुकड़ा, व सिंबलिं-शाल्मला, इस किस्म के पदार्थ जिनमें खाने का भाग थोड़ा और फैंकने का भाग ज्यादा है, ऐसे पदार्थ देने वाले को साधु प्रत्याख्यान कर दे कि मुझे यह नहीं कल्पता है।

इस गाथा में अस्थि शब्द से पशु पक्षियों की हड्डी, अनिमिस शब्द से मछली का अर्थ तो यहां हो ही नहीं सकता इसका विशद रूप से वर्णन हम आगे करेंगे। खैर, कुछ काल के लिये "तुष्यतु दुर्जनः" इस न्याय से मान भी लें, तो भी कोशाम्बीजी अपने ही कुठार से अपने पैर में आघात कर रहे हैं, उनका ही तमाचा उनके सिर पर गिरता है, क्योंकि जब साधुजी साफ निषेध कर रहे है, कि मुझे ये चीजें नहीं कल्पती है, फिर इस गाथा से

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

मांसभक्षण का विधान कैसे हुआ ? शायद वे ऐसा कहें कि बहु अट्ठियं बहु कंटयं के प्रत्याख्यान से सिद्ध होता है कि बिना हड्डी और बिना कंटक का अथवा थोड़ी हड्डी और थोड़े कंटक वाला मांस कल्पता था तो यह भी उनका भ्रम नहीं किन्तु महा भ्रम है कि अगर किसी सद् गुरु के पास थोड़ा बहुत मीमांसा शास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया हो ता मालूम होगा कि वाक्य कितने प्रकार के होते हैं, और उनका अर्थ किस प्रकार किया जाता है ? पिता अपने पुत्र के प्रति उपदेश कर रहा है कि "सत्यं चर मिथ्यां मा वद" अर्थात् सदैव सत्य बोलो, झूठ कभी भी मत बोलो तो इस परसे कोई भी सहृदय और साक्षर विद्वान यह अर्थ नहीं निकाल सकता कि लड़का झूठ बोलता रहा होगा, तब तो पिता ने यह उपदेश दिया कि "सत्यं चर, मिथ्यां मा वद" अगर ऐसा अर्थ करता है तो विधि नियम अर्थ-वादादि वाक्य भेद ज्ञानों से शून्य वह व्यक्ति माना जायेगा । अतः श्री दशवैकालिकजी की उपर लिखित गाथाओं से तो "द्विषन्नपि दुर्जनेनोपकृतमेव" अर्थात् आरोप करते हुए भी कोशाम्बीजी ने जैन समाज को अमांसाहारी ही सिद्ध किया ।

अब जैन सम्प्रदाय के अनुसार और अवचूरिकार के मत से गाथा का शुद्ध अर्थ-बहु अट्ठियं (बहु अस्थिकम्) बहु बीजक मिति यावत् पोग्गलं (पुद्गलम्) पुद्गलाख्यद्रुमफलम्, अणिमिसं वा (अनिमिषं वा) अनिमिषाख्य द्रुमफलं वा, बहु कंटयं (बहु कण्टकम्) अत्थियं (अस्तिकम्) अस्तिक द्रुमफलम्, तिंदुयं (तिंदुकम्) टिम्बरकीफलम्, उच्छुखंडं (इक्षुखण्डम्) सिंबलिं शाल्मली वल्ल्यादिफलिकां वा दिंतियं पडिआइक्खे इति संबंधः । अर्थात् बहुत बीज वाले पुद्गल नामक वृक्ष का फल और बहुत कांटे वाला अनिमिष नामक वृक्ष का फल, अथवा अनिमिष नाम वाले बहु कण्टक वृक्ष का फल, तथा अस्तिक तिन्दुक, बिल्व इक्षुखण्ड और

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

शाल्मली अर्थात् जिनमें खाने का अंश थोड़ा और फैंकने का अंश ज्यादा है, ऐसे पदार्थ देने-वाली को साधुजी प्रत्याख्यान (निषेध) कर दें कि ऐसी चीज मुझे नहीं कल्पती हैं।

जिस पुस्तक का प्रमाण ऊपर दिया है वह विक्रम संवत् १६६५ में लिखो गई है, जिसको आज ३३६ वर्ष होते है, अवचूरिकाकार का समय तो और भी पहले का होगा। आक्षेपकर्ता कोशाम्बीजी की अवस्था ज्यादा से ज्यादा ७०-८० वर्ष के करीब की होगी, फिर वर्तमान काल में जैन साधुओं का आचार और सूत्र की टीका इन दोनों का मिलान करके जैन संस्कृति को शाकाहारी ही सिद्ध करने की युक्ति उनको क्यों नहीं सूझी ? या " कहीं की ईंट कहीं का रोडा, भानुमती ने कुनबा जोडा " इस न्याय का अवलम्बन करके प्रकरण विरुद्ध, टीका विरुद्ध, आचार विरुद्ध प्ररूपणा विरुद्ध और व्यवहार विरुद्ध अर्थ का उल्लेख करके, अपने अपाण्डित्य का परिचय दिया।

अब यहां पर स्वमत से विचार यह करना है कि " बहु अट्ठियं पोग्गलं अणिमिसं वा बहुकंटयं " इस गाथा के उत्तरार्द्ध में " अत्थिअं तिंदुअं विल्लं उच्छुखंडं सिंबलिं ये सभो वनस्पतियों के नाम आये हैं। प्राचीन विद्वानों का यह प्रौढ सिद्धांत है कि सहचरितासहचरितयोर्मध्ये सहचरितस्यैव ग्रहणम् " अर्थात् सहचरित और असहचरित यानी साथ में रहने वाले और साथ में नहीं रहने वाले (प्रकरण संगत, प्रकरण विरुद्ध) इन दोनों की उपस्थिति हो, वहाँ पर सहचरित अर्थात् प्रकरण संगत का ही ग्रहण किया जाता है। जैसे " राम-कृष्णौ " इस पदमें कृष्ण तो (वासुदेव के अवतार) एक ही है, उसमें शंका का कोई स्थान ही नहीं है, परन्तु राम तीन हुये हैं (१) परशुराम (२) दाशरथि राम अर्थात् मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र और तीसरे कृष्ण वासुदेव

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

के ज्येष्ठ भ्राता बलराम, इन तीनों में से यहां कौन लिये जाय ? इस शंका स्थल पर पूर्वोक्त परिभाषा के बल से कृष्ण वासुदेव के साहचर्य से बलराम का ही बोध होता है, यह बात आबालवृद्ध सभी जानते हैं। इसी तरह श्री दशवैकालिक सूत्र की इस गाथा में अस्तिक, तिन्दुक बिल्व इक्षुखण्ड और शाल्मली इन वनस्पतियों के साहचर्य से बहु अस्थिक अर्थात बहुत गुठली वाली और बहु कंटक अर्थात बहुत कांटेवाली वनस्पतियों का ही ग्रहण होगा। मांस और मछली का अर्थ करना प्ररूपणा, प्रकरण और साहचर्य से सर्वथा विरुद्ध है। इस बात को हर एक सहृदय निष्पक्षपात व्यक्ति स्वीकार कर सकेगा।

इस उपरिलिखित न्याय के अनुसार गुरु परम्परा से प्राप्त अर्थ यह होता है कि इस गाथा में पुग्गल शब्द आया हुआ है उसका रूप रस गंध स्पर्शवाला कोई पदार्थ इतना ही मूल अर्थ होता है, चाहे उसको फलका गिर (गूदा) इस अर्थ में लगावें चाहे प्राणियों के मांस अर्थ में लगावें लेकिन कौनसा अर्थ कहां पर लगाया जाय ? इसका निर्णय इसके विशेषण शब्दों परसे होगा। अब यहां पर पुद्गल शब्द के पहले बहु अट्ठियं ऐसा विशेषण दिया है बहु अट्ठियं इसमें दो पद हैं बहुका अर्थ होता है बहुत और अट्ठियं पदका अर्थ शास्त्रों में और कोषों में मिलता है–गुठली यह तो फलों में ही होती है, मांस में नहीं। इसलिये शुद्ध अर्थ हुआ कि बहुत गुठली वाले फल का गूदा। इसी तरह अणिमिसं वा बहु कंटयं इस पद का अर्थ यह हुआ कि अनिमिष नाम वाले वृक्ष का फल तथा बहु कंटयं यानी बहुत कंटक वाले बबूल वृन्ताक आदि के शाकादि एवं अस्तिक, तिन्दुक, बिल्व, इक्षुखण्ड, शाल्मली वगैरह के पदार्थ देने वाले को प्रत्याख्यान कर देना कि मुझे ऐसा पदार्थ नहीं कल्पता है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

इस लेख को लिखते समय एक जिज्ञासु सज्जन ने जिज्ञासा की कि अस्थि शब्द का अर्थ तो हड्डी होता है, और अनिमिष तथा अस्तिक नाम वाले वृक्ष तो आज कोई देख नहीं पड़ते, फिर यह अर्थ कैसा माना जाय ? उनके दो प्रश्नों का उत्तर तो पन्नवणाजी सूत्र के पहले पद में वनस्पति के प्रकरण में उसी अवसर पर मिलते हैं। पन्नवणाजी सूत्र का मूल पाठ इस प्रकार है:—

से किं तं रुक्खा ? दुविहा पण्णत्ता, तंजहा एगट्ठिया य बहुबीयगा य। से किं तं एगट्ठिया ? अणेगविहा पन्नत्ता, तंजहा-णिंबंब जंबुकोसंब साल अंकुल्ल पोलु सेलूय। इत्यादि-से त्तं एगट्ठिया पर्यन्त' ॥

यहां पर अस्थि शब्द गुठली अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इसी तरह " अत्थिय " अस्तिक नामक वृक्ष अर्थ के लिये पन्नवणाजी सूत्र के उसी (वनस्पति) प्रकरण में—

अत्थिय तेंदु कविट्ठे अंबाडग माउलिंग बिल्ले य।
आमलग फणिस दालिम आसोठे उंबर वडे य ॥

(बहु बीजक वनस्पति प्रकरण गाथा १५)

इसी तरह अनिमिष नामक वनस्पति विशेष है जो आज अनुपलब्धसी प्रतीत हो रही है, उसको मिलाने के लिये तत्तद्देशीय भाषाओं का ज्ञान, संपूर्ण शास्त्र ग्रंथों का वाचनादि का भगीरथ प्रयत्न कीजिये।

कण्टक शब्द तो बबूल आदि वृक्षों के तथा वृन्ताक आदि फलों के कांटा अर्थ में प्रसिद्ध ही है। गुरु परम्परा से कोई कोई विद्वान् कण्टक का अर्थ वनस्पतियों के अन्दर जो रेसा (नस)

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

अभक्ष्य अंश है उसमें प्रयोग करते है। क्योंकि शब्दों के अर्थ प्रकरण के अनुसार हुआ करते हैं, जहां पर कोष भी काम नहीं देते हैं। अतएव महाभाष्यकार पतञ्जलि ने अपने विद्यार्थियों को उपदेश किया कि "सर्वे सर्वार्थ वाचकाः" अर्थात् सभी शब्द सभी अर्थों को कहते हैं। विद्यार्थियों ने कहा कि भगवान् 'नैतदुपलभ्यते" अर्थात् ऐसा व्यवहार में देखा तो नहीं जाता, क्योंकि घट शब्द से घट ही अर्थ होता है, पट अर्थ नहीं होता। भाष्यकार ने उत्तर दिया कि "उपलब्धौ यत्नः क्रियताम्" अर्थात् सभी शब्द सभी अर्थों के वाचक हैं, इसको जानने के लिये यत्न करो।' 'काम्बोजाः गच्छतीत्यस्य स्थाने सवतीति प्रयुञ्जन्ते" अर्थात् कम्बोज देश वाले गच्छति के स्थान में सवति का प्रयोग करते हैं।

भाष्यकार के इस कथन से यह सिद्ध हो गया कि जब तक मनुष्य देश परिभ्रमण करके उन २ देशान्तरों में प्रचलित व्यवहारिक शब्दों का अर्थ न समझ लें, तथा सभी मतों के सम्पूर्ण ग्रंथों का यथावत् अध्ययन न कर लें, तब तक किसी एक शब्द का एकान्त अर्थ करके बैठना, यह बड़ी भारी भूल है; अतः जैनाचार्यों में प्राचीन काल से जो यह प्रथा कहने की चली आ रही है कि 'मेरा गुरुगम और व्यक्तिगत अर्थ यह है, तत्व तो केवलिगम्य है" यह कितना ऊंचा आदर्श है? अगर कोशाम्बीजी या उनके अन्य सहोदर कण्टकका अर्थ मछलीका कांटा ही लेकर बैठेंगे तो अधोलिखित बातों का अर्थ समन्वय करें।

कण्टकोद्धरणे नित्यमातिष्टेद्यत्नमुत्तमम्। किंच-एवमादीन् विजानीयात्प्रशांल्लोककण्टकान्। अपरंच—सर्व कण्टक पापिष्टं हेमकारंतु पार्थिव।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

कहने का सारांश यह है कि शास्त्र के मूल पाठ में यहांपर जो कण्टक शब्द आया है, वह रेसा अर्थात् वनस्पतियों के अन्दर जो नसें होती हैं उसको सूचित करता है। वे अगर आहार में आवें तो उनको परिठाना पड़ता है। अतः बोज वाले और रेसावाले वनस्पति निष्पादित आहार साधु न लेवे।

अब ऊपर लिखे हुए श्री दशवैकालिकजी सूत्र के अर्थ से श्री आचारांगजी सूत्र के पाठका भी बहुत अंशों में खुलासा हो ही गया, किन्तु आक्षेपकारी लोग भोले भाले प्राणियों को धोखे में न ला सकें इस लिये उसका भी ईषद्विवरण दे दिया जाता है।

श्री आचारांग सूत्र का मूल पाठ यह है।

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा से जं पुण जाणेज्जा, बहुअट्ठियं मंसं वा, मच्छं वा बहुकंटयं, अस्सिं खलु पडिगाहियंसि अप्पे सिया भोयणजाए बहु उज्झिय धम्मिए। तहप्पगारं बहुअट्ठिअं वा मंसं मच्छं वा बहुकंटयं, लाभे वि संते णो पडिगाहेज्जा। से भिक्खू वा भिक्खुणी वा गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुप्पविट्ठे समाणे परो बहुअट्ठिएण मंसेण मच्छेण उवणिमंतेज्जा, आउसंतो समणा अभिकंखसि बहुअट्ठिअं मंसं पडिगाहेत्तए? एयप्पगारं णिग्घोसं सोच्चाणिसम्म से पुव्वमेव आलोएज्जा, आउसोत्ति वा भइणीत्ति वा णो खलु मे कप्पइ बहुअट्ठियं मंसं पडिगाहित्तए। अभिकंखसि से दाउं जावइयं तावइयं पोग्गलं दलयाहि मा अट्ठियाइं। से एवं वदंतस्स परो

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

अभिहट्टु अंतो पडिग्गहगंसि बहुअट्ठियं मंसं परिभाएत्ता-णिहट्टु दलएज्जा, तहप्पगारं पडिग्गहणं परहत्थंसि वा परपायंसि वा अफासुयं अणेसणिज्जं लाभे वि संते णो पडिगाहेज्जा। से आहच्च पडिगाहिए सिया, तं णोहित्तिव-एज्जा, अणोवत्तिवएज्जा। से तमायाय एगंतमवक्कमेज्जा। अवक्कमेत्ता अहे आरामंसि वा अहे उवस्सयंसि वो अप्पंडए जाव संताणए मंसगं भोच्चा अ अट्ठियाइं कंटए गहाय से तमायाए एगंतमवक्कमेज्जा। अवक्कमेत्ता अहेज्झामथंडिलंसि वा अट्ठिरासिंसि वा किट्टरासिंसि वा तुसरासिंसिवा गोमय रासिंसि वा अण्णयरंसि वा तहप्पगारंसि थंडिलंसि पडिलेहिय पडिलेहि पमज्जिय पमज्जिय तओ संजयामेव पमज्जिय पमज्जिय परिठवेज्जा।

इस सूत्र के पाठ में "बहुअट्ठियं मंसं" और मच्छं वा बहु कंटयं ऐसे शब्द आये हैं, उस पर से बहुत हड्डी वाला मांस और बहुत कांटे वाली मछली ऐसा अर्थ कोशाम्बीजी ने किया है। सिर्फ कोशाम्बीजी ही नहीं बल्कि जितने उनके विचार के समकक्ष होंगे, और जैन धर्म के आचार विचार से अनभिज्ञ होंगे, उन सभी लोगों को यही अर्थ भासित होने वाला है। और निरामिष भोजी जैन समाज तथा उनके आचार विचार के समकक्ष प्राणियों को दूसरा ही अर्थ भासित होगा जो उनके आचार विचार से संगत और पवित्रता सूचक होगा। एक ही सूत्र के भिन्न भिन्न अर्थ भासित होते हैं। यह सिर्फ जैन सूत्रों में ही नहीं परन्तु इतर संप्रदायों में भी भिन्न २ विचार वाले व्यक्तियों की वजह से वाक्यों के भिन्न २ अर्थ पाये जाते हैं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

हम ऊपर लिख आये हैं कि शब्दों के अर्थ अनन्त होते हैं, जिस भूमिका का व्यक्ति होगा, उसको वही अर्थ भासित होगा। देखिये-बौद्धों के ऐतिहासिक तथा धार्मिक ग्रंथों में लिखा है कि बुद्ध भगवान ने परिनिर्वाण अर्थात आयुष्य के अन्तिम दिन में सूकर मद्दव पदार्थ भोजन के लिये ग्रहण किया। अब बौद्धों में मांसाहारी पार्टी है, वह सूकर मद्दव शब्द का अर्थ सूअर का कोमल मांस ऐसा करती है। निर्मान्साहारी पार्टी शूकर से मर्दित वनस्पति या, शूकर से मर्दित भूमि में उगनेवाली अहिछत्रक नामक वनस्पति, ऐसा अर्थ करती है। खुद कोशाम्बोजी ने ही स्वरचित भगवान् बुद्ध नामक पुस्तकके उत्तरार्द्ध में पृष्ठ ६६ पेरेग्राफ ४ में उदान अट्ठिकथा नामक बौद्ध ग्रंथ का आधार दिया है कि "केचिय सूकर मद्दवंति, न सूकर मंसं, सूकरेहि मद्दित वंसकलोरीत्ति वदंति। अन्नेतु-सूकरेहि मद्दितपदेसे जात अहिच्छत्तकंत्ति।

अर्थात् कोई ऐसा कहता है कि सूकर मद्दव शब्द का अर्थ शूकर का मांस नहीं है किन्तु शूकर से तोड़ी गई वनस्पति अर्थ है। दूसरे लोग कहते हैं कि शूकर द्वारा खोदी गई जमीन में अहिच्छत्रक नामक वनस्पति। अब यहां विचार करने की बात है, कि अहिंसा धर्म के प्ररुपक भगवान बुद्ध के विषय में युक्तिसंगत, प्ररुपणासंगत और बहुमत अर्थ वनस्पति को मान्यता न देकर इन्द्रिय लोलुपी जीव किसी महान पुरुष को मांस सेवी सिद्ध कर रहे हैं; अब इससे अधिक दुस्साहस क्या होगा ?

यहां पर बुद्ध मत के अनुयायी सैंकड़ों सहृदय व्यक्ति अर्थ करते हैं, कि शूकर का पर्याय वाचक शब्द है—वाराह, मद्दव शब्द का अर्थ होता है मृदु, अतः बुद्ध भगवान ने "वाराहीकन्द" नामक वनस्पति के गिर को लिया है। यही मत बहुमत है और भगवान के अहिंसा प्ररुपणा से सुसंगत है, तो धर्म संगत और

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

बहुजन सम्मत इस अर्थ को कोशाम्बीजी क्यों नहीं ग्रहण करते ? अन्तिम अवस्था में भी तो अपने स्थान पर आजाना चाहिये अस्तु, अब इनकी बात यहीं रहने देते हैं।

वैदिक सम्प्रदाय में देखिये। श्रुति वाक्य है कि "अजानाल-भेत" अर्थात् "अजों का आलम्भन यानी यज्ञार्थ हिंसा करनी चाहिये। अब यहां पर दो अर्थ उपस्थित होते हैं, अज शब्द का एक अर्थ बकरा होता है। अतः कितनेक लोग अर्थ करते हैं कि बकरों का वध करके यज्ञ करना चाहिये। दूसरा अर्थ तीन वर्ष का धान्य विशेष होता है। इन दोनों मतों में किसका मत लेना ? ऐसे विषम स्थान में मीमांसा निर्णय कर रही है कि धान्य अर्थ लेने से यदि श्रुति का समन्वय भी हो जाता है, तो इसी में अधिक फल है। इसलिये प्रसिद्ध अर्थ छोड़कर अप्रसिद्ध ही अर्थ लेना उचित है। क्योंकि श्रुतिका समन्वय भी हो जाता है और हिंसा से भी बच जाते हैं। अब यहां पर विद्वान् परीक्षक लोग विचार करें कि मीमांसा की इस युक्तियुक्त पद्धति को स्वीकार करने से भगवान बुद्ध हो या महावीर हों, उनमें कही मांस खाने का आरोप आता है क्या ? कदापि नहीं। परन्तु लोकायतिक (चार्वाक) मत के अनुयायी उदरम्भरी लोगों ने अपना स्वार्थ साधन करने के लिये अपना धर्म, अपने रीतिरिवाज और अपने व्यक्तित्व को तो नष्ट कर ही डाला " बाण बाण गये दश हाथ की डोरी भी लेते गये " अर्थात् दुष्ट बैल खुद तो भाग ही जाता है, लेकिन अपने साथ दश हाथ की रस्सी भी लेते जाता है इस कहावत के अनुसार पवित्र जैन धर्मानुयायियों को भी धोखे में डालने लगे। परन्तु जैन समाज को इन धोखे बाजों के फन्दे में नहीं आना चाहिये। इस सूत्र का समन्वय अपने जैन धर्म के प्राचीन तथा आधुनिक विद्वानोंने अच्छी तरह खुलासावार कर दिया है। इस स्थल पर हम भी अपना

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

धारणा गुरु परम्परा के अनुसार लिख रहे हैं-मूल पाठका अर्थ समझने के पहले इस बात को पूर्ण ध्यान में रख लेना चाहिये कि कि मांस शब्द का एक अर्थ पशु-पक्षीका मांस (गोस्त) होता है। दूसरा अर्थ वनस्पति के शरीर के अंदर की गिर (गुद्दा) होता है। देखिये गीर्वाण लघुकोष पृष्ट ३७६। इस बात का स्पष्टतया वर्णन आगे श्री भगवतो सूत्र के समाधान प्रसंग पर करेंगे। मच्छ शब्द का एक अर्थ मछली और दूसरा अर्थ मच्छ नामकी वनस्पति, उसको हिन्दी में मत्सी और मराठी में मत्स्याक्षी कहते हैं देखिये भाव प्रकाश पृष्ट २३० श्लोक २४६

मत्स्याक्षी वाहिलका मत्स्यगन्धा मत्स्यादनीति च। मत्स्याक्षी ग्राहिणी ज्ञाता, कुष्ठवित्तकफास्रजित्। लघुस्तिक्ता कषाया च स्वाद्वी कटुविपाकिनी।

और उसको ही मागधी भाषा में मच्छ कहते हैं, देखो-पाइय सद्द महण्णवो नामक कोशके पृष्ट १२७४ "मत्स्य के आकार को एक वनस्पति। एवं कण्टक शब्द का एक अर्थ कांटा और दूसरा अर्थ कण्टक इव कण्टक" अर्थात् वनस्पति के अन्दर की रेसा (नस) अथवा सूई के समान तीक्ष्ण अग्रभाग वाला, किंवा वनस्पति विशेष, बबूल, करीर, हिंगण बेट इत्यादि देखिये गीर्वाण लघुकोश पृष्ट ४३६ तथा अस्थि शब्द का एक अर्थ हड्डो, दूसरा अर्थ बोज या गुठली होता है। देखिये गीर्वाण लघुकोष पृष्ट ८०। यदि सूत्र में पहले अर्थ का ग्रहण करते हैं तो आचार और प्ररुपणा से सूत्र का कुछ भी संबंध नहीं रह जाता है। अतः "अजानालभेत" इस श्रुति का प्रमाण जो पहले दे आये हैं, उसो न्याय से दूसरा अर्थ लेकर हो आचार और प्ररुपणा के अनुसार शास्त्रार्थ का समन्वय होता है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

'से भिक्खू वा भिक्खूणी वा' इत्यादि श्री आचारांजी का मूल देखिये। उसका अपनी गुरु परंपरा के अनुसार शुद्ध अर्थ इस प्रकार होता है:—

साधु हो या साध्वी हो बहुत गुठली वाली वनस्पतिकाय-शरीर के मांस अर्थात् गिर (गूदा) को एवं बहुत कण्टक अर्थात् बहुत नसवाली वनस्पति के शाकादिकों के मिलने का अवसर आया-जिसमें खाने का अंश कम है और फेंकने का ज्यादा है, इस प्रकार के बहुत गुठली वाले गिर किंवा बहुत कांटेवाले वनस्पति विशेष का शाक मिले तो उसको नहीं लेना चाहिये। वह साधु अथवा साध्वी गृहस्थ के घर पर भिक्षा के लिये जावें, उस समय गृहस्थ कहे कि हे आयुष्मन् श्रमण! यह बहुत गुठलीवाला गूदा लेने की तुम्हारी इच्छा है क्या? इस प्रकार का भाषण सुनकर पहले ही कह दे (पुरूष होतो) आयुष्मन्! (यदि स्त्री होतो) हे भगिनि! यह बहुत गुठलीवाला गिर मुझे लेना योग्य नहीं है। अगर तुम्हारी इच्छा होतो जितना देना चाहते हो उतना गूदे का भाग दो, गुठली मत दो, ऐसा कहते हुए भी अगर वह गृहस्थ जबरदस्ती से देने के लिये प्रवृत्त हो, तो उसे अयोग्य समझकर नहीं लेना। शायद उसने पात्रमें डाल ही दिया, तो एक तरफ ले जाना और बगीचे में किंवा उपाश्रय में जहां प्राणियों के अण्डे वगैरह न हों ऐसी जगह पर बैठकर उस गिर और शाकको खाकर गुठलियां और रेसाएं लेकर एकान्त में जाना। वहां जाकर जली हुई जमीन पर, हड्डियों की राशिपर, जिसपर जंग चढा हो ऐसे पुराने लोहे के ढेर पर सूखे हुए गोबर की राशिपर, अथवा इसी प्रकार के दूसरे स्थण्डिल पर अच्छी तरह साफ करके उन गुठलियों को अथवा रेसाओं को संयम पूर्वक रख देना। आज भी स्थानक-वासी संप्रदाय के साधु साध्वी समुदाय में ऐसी ही प्रथा चली

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आती है कि गोचरी में जाने पर अगर कहीं बीजवाली चीज जैसे आंवले का मुरब्बा, नसवाली चीज जैसे सेवगा की सिंगा का शाक, लेने का अवसर आता है। तो साधु साध्वी साफ शब्दों में कहते हैं, कि बीज और नस निकालकर आप दे सकते हैं।

कोई कोई ऐसा भी अर्थ करते है कि मांस रोहिणी और मत्स्यशकला ये दो औषधियां है, देखिये क्रमशः भाव प्रकाश पृष्ट २०८ श्लोक १२५ पृष्ट १५४ श्लोक १४१। अतः मंस शब्द से मांस रोहिणी और मच्छ शब्द से मत्स्यशकला लेना। यह बात व्याकरण से भी सिद्ध होती है, और लोक शास्त्र प्रचलित भी है कि "नामैक-देशे नाम मात्रस्य ग्रहणम् यथा सत्या सत्यभामा, भीमो भीमसेन-वत्। अर्थात् नाम के एक देश ग्रहण से भी नामी (नाम वाले) का बोध होता है। जैसे सत्या कहने से सत्यभामा और भीम कहने से भीमसेन का ग्रहण होता है। इस बात को पाणिनिका व्याकरण भी सिद्ध करता है कि "विनापि प्रत्ययं पूर्वोत्तरपदयोर्लोपोवक्तव्यः" यथा—देव=,दत्त=,देवदत्त=अर्थात् जैसे किसी का "देवदत्त" ऐसा नाम है। कोई उसको सिर्फ देव शब्द से आह्वान करता है, अथवा दत्त शब्द से आह्वान करता है, किंवा देवदत्त सम्पूर्ण शब्द से आह्वान करता है परन्तु हर हालत में देवदत्त का ही बोध होता है।

ऊपर लिखे हुए प्रमाण के अनुसार मंस शब्द से मांस रोहणी और मच्छ शब्द से मत्स्यशकला नामक वनस्पति का ग्रहण हुवा। ये दोनों औषधियां प्रायः रुप-रस-गंध में मांस और मत्स्य के स्वरुप में पाई जाती है। देखिये! मांस रोहिणी और मत्स्य शकला के लिये भावप्रकाश पृष्ट २०८ और १५४ में।

मांस रोहिण्यतिरुहा, वृंत्ता चर्मकरी कृषा। प्रहार

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

वल्ली विकंशा, वीर वल्ल्यपि कथ्यते ॥ स्यान्मांस रोहिणी वृष्या, सरा दोषत्रयापहा ॥ १२५ श्लोक ॥

तथा कट्वी तु कडुका तिक्ता, कृष्णभेदा कडंभरा ॥ अशोका मत्स्यशकला, चक्रांगी शकुलादनी ॥ १४१ ॥ मत्स्यपिता कांडसहा रोहिणी कटुरोहिणी ॥ कट्वी तु कडुका पाके, तिक्ता रुक्षा हिमा लघुः ॥ १४२ ॥

यहांपर यह भी विचार करना चाहिये कि जो शास्त्रकार सचित्त अथवा सदोष वनस्पतियों का भी ग्रहण करने की सख्त मनाई करते है और परिठाने योग्य वस्तुको परिठाने में भी एकेन्द्रिय जीव को पीड़ा न हो, इस प्रकार प्रमार्जन करके परिठाने को आज्ञा देते हैं, वे ही शास्त्रकार उसी स्थलपर पंचेन्द्रिय जीव के वध से होने वाले मांस और मछली खाने की आज्ञा दें, यह बात कहने की तो क्या ? बुद्धि ग्राह्य भी हो सके ऐसी संभावना नहीं दिखाई देती। और भी देखिये। यदि हमेशा मांस मछलियों को खाने का रिवाज होता, तो इसके पहले हा उसी जगह सूत्र २७४ में भगवान् फरमा रहे हैं कि जहां मांस और मछली बन रहा हो वहां पर साधुओं को जाना भी नहीं। ऐसा निषेध क्यों लिखते ? और भी देखिये कि यह सम्पूर्ण अध्ययन आहार और पानी के सम्बन्ध में आया है, इस सूत्र के पूर्व में वनस्पति का अधिकार है। पर भाग में लवण (नमक) और बीच में कहो विधि वाक्य का निर्देश नहीं करते हुये अपवाद वाक्य का निर्देश कहां से आगया ? और भी देखिये कि मेरी धारणानुसार ३२ आगमों के अन्दर मांसमत्स्य सेवन के लिये विधिवाक्य तो एक भी नहीं मिलता है. परन्तु निषेध वाक्य स्थान २ पर मिल रहे हैं। फिर ऐसी अवस्था में मत्स्य-मांस

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

ग्रहण के विषय में अपवाद वाक्य कैसे आ सकता है ? इसको सहृदय लोग विचार करें।

निषेध वाक्य के लिये स्थाली पुलाक न्याय से २-३ उदाहरण यहां दे रहे हैं। जैसे—(१) श्री सूयगडांग सूत्र के अठारहवें क्रियानामक अध्ययन में धर्मपक्ष, अधर्मपक्ष और मिश्रपक्ष के ऊपर विशेष विवेचन किया है। धर्म पक्ष में साधु, अधर्म पक्ष में मिथ्यात्वी, और मिश्रपक्ष में श्रावक का वर्णन है। उसमें से धर्मपक्ष (साधु) का विशद रीति से आचार बतलाते हुए एक विशेषण ऐसा आया है कि "अमज्ज मंसासिणो" अर्थात् मद्यपान और मांस-सेवन नहीं करने वाले साधु कहलाते हैं। जैन श्रमणों के लिये मद्यमांस सेवन के विषय में स्पष्ट रीति से निषेध भगवान कर रहे हैं, फिर मांस लेने के लिये और खाने के लिये आज्ञा कैसे हो सकती है ?

(२) दूसरा प्रमाण लीजिये। श्री सूयगडांग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कंध के कुशील परिभाषा नामक सप्तम अध्ययन की तेरहवीं गाथा में प्रभु ने स्पष्ट फरमाया है कि—"ते मज्ज मंसं लसुणं च भोच्चा, अनत्थवासं परिकप्पयंति। अर्थात् जो मद्यमांस और लसुन खाकर मोक्ष की इच्छा करते हैं, वे अनर्थों का स्थान रूप इस संसार में ही परिभ्रमण करते है। सारांश, मद्यमांस का सेवन जन्म मरण-रूप संसार को बढ़ाने वाला है, मोक्ष प्राप्ति कराने वाला नहीं है।

(३) तीसरा प्रमाण लीजिये। श्री स्थानांग सूत्र के चौथे ठाणे अर्थात् चौथे अध्ययन के चौथे उद्देशे में नरक गति के प्रभुने चार कारण बतलाए हैं। जैसे—"चउहिं ठाणेहिं जीवा णेरइयत्ताए कम्मं पगरेंति, तंजहा—महारंभयाए, महापरिग्गहयाए पंचिंदिय-वहेणं, कुणिमाहारेणं" अर्थात् चार कारण से जीव नारकी के कर्म बांधते हैं (१) महा आरंभ से (२) महा परिग्रह से (३) पंचेन्द्रिय के

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

वध से और (४) मांस का आहार करने से। मांसाहार करना जब नरक गति का कारण होता है, तब उसके सेवन का विधान सिद्धांत में कैसे आ सकेगा? सेवन का विधान तो दूर रहा, इस अभक्ष्य पदार्थ (मांस) का मन से चिंतन करने में और वचन से बोलने में भी प्रभुने पापका कारण फरमाया है। देखिये! श्री सूत्रकृतांग सूत्र के आर्द्रक नामक २२ वे अध्ययन में आर्द्रक मुनि ने मांसाहारी बौद्ध श्रमणों को (फटकार देते हुये) जैन श्रमण संस्कृति की सत्य प्ररूपणा इस प्रकार की गई है। जैसे—

जे यावि भुंजंति तहप्पगारं, सेवंति ते पावमजाणमाणा।
मणं न एयं कुसलं करंति, वायावि एसा बुइया उ मिच्छा॥३६॥

अर्थात्—जो इस प्रकार का यानी मांस का आहार करता है, वह पाप को नहीं जानने वाला अनार्य प्राणी है। परन्तु कुशल पंडित मनुष्य मन से भी मांस सेवन का चिंतन नहीं करता है। अगर वचन से बोल दिया तो उस पर भी मिच्छामि दुक्कडं देता है अर्थात् मेरा पाप निष्फल होवे ऐसा पश्चात्ताप करता है। यह निषेधात्मक चौथा प्रमाण है। इसी विषय में निम्न लिखित पांचवा प्रमाण देखिये। श्री उत्तराध्ययन सूत्र के सातवें अध्ययन में मांस खाने वाला इस भव तथा परभव में दुःखी होता है और अकाल में मरण करके दुर्गति में जाता है ऐसा वर्णन है। जैसे—

हिंसे बाले मुसावाई, माइल्ले पिसुणे सढे।
भुंजमाणे सुरं मंसं, सेयमेयंति मन्नइ॥९॥
कायसा वयसा मत्ते, वित्ते गिद्धे य इत्थीसु।
दुहओ मलं संचिणइ सिसुनागोव्व मट्टियं॥१०॥

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

इस तरह जैन शास्त्रों बहुत स्थान स्थान पर निषेधात्मक प्रमाण मिलते हैं। भला पाठक लोग विचार करें कि जो भगवान को मांसाहारी बता रहे हैं, उनको इससे बढ़कर क्या प्रमाण देना चाहिये ? आक्षेप कर्ता व्यक्ति किसी एक धर्म के संपूर्ण ग्रंथों का गुरु मुख से ग्रंथि उद्घाटन के साथ अध्ययन तो करते ही नहीं लेकिन वाचन भी नहीं करते और कहीं पर भ्रामक एक शब्द भी पा गये तो उसीको लेकर कूप मंडूक के समान उडान करने लगते हैं, आखिर विद्वानों के सामने लज्जित होना पड़ता है।

(३) तीसरा प्रमाण मांसाहारी लोग श्री भगवतीजी सूत्र का देते हैं कि खुद भगवान् महावीर स्वामी ने ही मांसाहार किया है, वह पाठ भगवतीजी सूत्र के १५ वें शतक में रेवती गाथा पत्नी के दानाधिकार में है। जैसे—

तं गच्छह णं तुमं सीहा ! मेंढियगामं नगरं, रेवतीए गाहावइणीए गिहे, तत्थ णं रेवतीए गाहावइणीए मम अट्ठाए दुवे कवोयसरीरा उवक्खडिया, तेहिं नो अट्ठो। अत्थि से परियासिए मज्जारकडए कुक्कुडमंसए तं आहराहि, एएणं अट्ठो।

उसका अर्थ मांसाहारी लोग नीचे लिखे अनुसार करते हैं, जैसे—

श्री महावीर स्वामी ने अपने सिंह नामक शिष्य को कहा, कि तुम मेढिक गांव में रेवती गाथा पत्नी के पास जाओ उसने मेरे लिये दो कबूतर सिझाकर रक्खे हैं, वे मुझे नहीं चाहिये। कल बिलावसे मारे हुए कुक्कुटका मांस तुमने तैयार किया है वह दो ऐसा उसे कहो।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

ऐसा अर्थ करने वाले अज्ञानी लोगों को इतना नहीं सूझता है कि जिन भगवान वीर प्रभु ने अपने समय में कन्याकुमारी से हिमालय तक तथा पूर्व समुद्र से पश्चिम समुद्र तक अहिंसा का झंडा फहरा दिया था, मनुष्य ही नहीं, किन्तु प्राणी मात्र के साथ मैत्री भाव की उद्घोषणा की थी, जो भगवान् निश्चय नयकी अपेक्षा व्यवहार नयको पालन करने के लिये स्थान स्थान पर जोर दे रहे हैं वे ही धर्म प्राण, धर्म रक्षक वीर प्रभु स्वयं मांस का सेवन किस प्रकार करेंगे ?

इन कुपण्डितों को जरा विचार करना चाहिये कि उस समय वैदिक सम्प्रदाय के साथ पूरी टक्कर लेकर भगवान वीर प्रभु ने अहिंसा की पताका फहराई। वैदिक सम्प्रदाय में मनुजी ने इन आठ प्राणियों को हिंसक बताया है यथा—

अनुमन्ता विशसिता. निहंता क्रयविक्रयी।
संस्कर्ता चोपहर्ता च, खादक श्चेति घातकाः॥ १॥

अर्थात् (१) पशु को मारने की आज्ञा देने वाला (२) पशु के टुकड़े करने वाला (३) मारने वाला (४) बेचने वाला (५) खरीदने वाला (६) पकाने वाला (७) परोसने वाला और (८) खाने वाला ये आठों घातक है। यदि इन आठों में से एक भी स्थल पर भगवान चूक जाते, तो उनकी अहिंसा का विकास इतना होता क्या ? और वह अहिंसा आजतक टिकती क्या ? जिस तरह मांसाहारी बौद्धों का नाम-निशान हिन्दुस्तान से शंकराचार्य के समय में मिट गया, उसी तरह जैनों का भी अस्तित्व नहीं रहता। परन्तु जैनों ने सत्य अहिंसा का पालन करके वैदिक संप्रदाय के साथ टक्कर लेकर के आर्य भूमि में अपना अस्तित्व रख लिया। सारांश यह कि भगवती सूत्र के अन्दर जो मांस अर्थ भासित हो रहा है वह सूत्रार्थ

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

नहीं है-किन्तु अर्थाभास है। शुद्ध अर्थ वह होगा जो प्रकरण, प्ररूपणा और धर्म के आचार-विचार से मिलता जुलता होगा आक्षेपियों का अर्थ पहले तो एकदम प्रकरण विरुद्ध है क्योंकि यह पाठ उस स्थल का है जब भगवान् महावीर प्रभु के ऊपर गोशाला ने तेजो लेश्या फेंकी उस समय भगवान के शरीर में गर्मी, दाह, मरोड़ा आदि रोग व्याप्त हो गये—

भगवान् की दशा देखकर सिंह अनगार मालुक कच्छ नामक वन में जाकर रोने लगते हैं। भगवान ने अपने केवल ज्ञान से जान लिया और सिंह अनगार को अपने पास बुला कर फरमाया कि हे सिंह अनगार ! तुम चिंता मत करो मैं अभी साढ़े पन्द्रह वर्ष तक जीवित रहूँगा। अब तुम एक काम करो कि मेंढिक नामक नगर में जाओ (यहां का मूलपाठ और आक्षेपियों का अर्थ पहले दिया जा चुका है) आक्षेपी लोग कहते हैं कि भगवान ने कबूतर का मांस लेने के लिये मना किया और कुक्कुट (मुर्गा) का मांस लाने के लिये उपदेश किया, अब देखिये भावप्रकाश पूर्व खण्ड पृष्ट ३३४ श्लोक नं ६० में कुक्कुट के मांस का गुण धर्म—

कुक्कुटो बृंहणः स्निग्धो, वीर्योष्णोऽनिलहृद्गुरुः ।

अर्थात् कुक्कुटका मांस पुष्टिदायक, स्निग्ध, उष्णवीर्य, वातनाशक और गुरु है। उसी पुस्तक के पृष्ट ३३५ में कबूतर के मांस का गुणधर्म देखिये—

पारावतो गुरुः स्निग्धो रक्तपित्तानिलापहः ।
संग्राही शीतलस्तज्ज्ञैः, कथितो वीर्यवर्द्धनः ॥

अर्थात् कबूतर का मांस भारी, स्निग्ध, रक्तपित्त और वातनाशक, संग्राही, शीतल और वीर्य वर्द्धक शरीर-शास्त्र वेत्ताओं ने

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

कहा है। अब यहां पर सहृदय व्यक्ति विचार करें कि भगवान् के दाह को शांत करने वाला जो कबूतर का शीतल मांस है, उसको तो लाने के लिये निषेध करते हैं, और उनकी प्रकृति को अधिक बिगाड़ने वाले कुक्कुट के मांस को मंगाते हैं, यह बात युक्ति युक्त और प्रकरण संगत कैसे सिद्ध हो सकती है ? और भगवान् का मांस सेवन करना तो उनकी प्ररूपणा एवं धर्म से एकदम असंगत ही है।

शायद कोई मांसाहारी ऐसा आक्षेप करें, कि मूलपाठ में "मम अट्ठाए" ऐसा पाठ है, इसलिये भगवान् आधा कर्मी आहार समझकर कबूतर के मांसको टालते हैं और मार्जार के लिये अथवा मार्जार से मारे हुए कुक्कुट के मांसको बनाया है उसको मंगाते हैं, यह भी उनकी समझ अज्ञान सूचक होगी, क्योंकि अहिंसारूपी लता के संरक्षणार्थ तो ४२ दोषों के घेरे लगाये गये हैं, जब मांस सेवन करके मूल अहिंसा को ही नष्ट कर डालेंगे, तो ४२ दोषों को पाल कर क्या करेंगे ? अतः भगवतीजी सूत्र के मूल पाठका प्ररूपणा-संगत, शास्त्रसंगत, युक्त युक्ति गुरु परम्परासे धारणा के अनुसार यह अर्थ होता है कि "कवोय" यह शब्द अर्द्ध मागधी भाषा का है, उसका एक अर्थ होता है कबूतर, दूसरा अर्थ होता है कूष्माण्ड (कोहला) देखो पाइय सद्द महण्णवो" कोशके पृष्ठ २९३ में शरीर कहते हैं देहको, शरीर शब्द का प्रयोग जिस तरह मनुष्य पशु पक्षी में किया जाता है, इसी तरह वनस्पति में भी किया जाता है। देखिये "पन्नवणा सूत्र के शरीर पदको"। अतः कवोय सरीर शब्द का अर्थ हुवा कूष्माण्ड का फल एवं कुक्कुट शब्द भी अर्द्ध मागधी भाषा का ही है उसका एक अर्थ होता है मुर्गा और दूसरा अर्थ होता है बिजौरा वनस्पति उसका मांस अर्थात् गिरी अतः कुक्कुट मंसं इस शब्द का अर्थ गुरु परम्परा से किया जाता है

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

बिजौरा पाक, देखिये। पाइय सद्दमहण्णवो पृष्ट ३१६ इसी तरह मज्जार शब्दका एक अर्थ होता है बिलाव, और दूसरा अर्थ होता है वात व्याधि के वायुओं में कोई वायुविशेष देखो पाइय सद्द महण्णवो पृ १२७४, तीसरा अर्थ होता है माज्जार नामक वनस्पति, देखो पन्नवणाजी प्रथम पद के वृक्षाधिकार में। मांस शब्द का अर्थ जिस तरह गोश्त में प्रसिद्ध है, उसी तरह फलों के गिर में भी प्रसिद्ध है। देखो सुश्रुत संहिता के अन्दर बिजौरा वनस्पति के गुणधर्म में:—

त्वक्तिक्ता दुर्जरा तस्य वातकृमिकफापहा ।
स्वादु शीतं गुरु स्निग्धं मांसं मारुतपित्तजित् ॥

अर्थात् बिजौरा वनस्पति के ऊपर का छिलका अत्यन्त तिक्त होता है, और वह वात कृमि और कफ को हरण करने वाला है और उस वनस्पति का मांस स्वादिष्ट शीतल, गुरु स्निग्ध तथा वातपित्तको हरण करने वाला है। अब इतना स्पष्ट प्रमाण मिलते हुए भी दुराग्रही लोग मांस शब्द का अर्थ गोश्त करते बैठें तो उनकी बुद्धि की बलिहारी है।

अब भगवती सूत्र के मूल पाठ का अर्थ भगवान की प्ररूपणा के अनुसार यह सिद्ध हो गया कि–हे सिंह अनगार! रेवती गाथा पत्नी ने जो दो कूष्माण्ड के फल हमारे लिये बनाये हैं, उस आहार को आधाकर्मी होने से नहीं लाना और जो वात व्याधि के शान्त्यर्थ अथवा विरादरी कन्द नामक औषधि के रस से बिजौरा पाक तैयार किया है; उसको लाना। ऐसा युक्ति युक्त शास्त्र सम्मत आचारसंगत अर्थ आक्षेपियों को क्यों नहीं सूझता? अथवा सूझते हुये भी आँख पर पट्टी बांधकर बनावटी अन्धे क्यों बन रहे हैं?

यहां पर कुछ बातें और भी विचारणीय है–बात यह है कि

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

भगवान ने कई एक सूत्रों के अन्दर खुले शब्दों में फरमाया है कि पंचेन्द्रिय का वध करने वाला, मद्य, मांस को सेवन करने वाला नरक गति में जाता है, फिर खुद भगवान् ने मांस सेवन किया और मांस सेवन करके मोक्ष प्राप्त किया यह बात कैसे बन सकती है ?

साधु को शुद्ध एषणीय आहार देते समय पुरे कम्म पच्छा कम्म अर्थात् आहार देने के पहले और आहार देने के बाद सचित्त पानी का भी स्पर्श नहीं होना चाहिये ऐसी अवस्था में रेवती गाथा पत्नी मांस का दान देकर स्वर्ग लोक में जाए और तीर्थंकर गोत्र बांधे यह बात किसी सहृदय की बुद्धि में आ सकती है क्या ?

तीसरी बात यह है कि शंका वाले इस सूत्र में कोषों के द्वारा वनस्पति वाचक सभी शब्द मिल रहे हैं, और वे वनस्पतियां भगवान के उस दाहादि रोग की शांति के लिए उपयोगी थी ऐसा वैद्यक शास्त्र भी बतला रहा है तथा भगवान की प्ररूपणा और प्रकरण से सहमत भी है। ऐसी अवस्था में सबल प्रमाणों को छोड़कर एकदेशीय अर्थ लेके बैठना यह दुराग्रह नहीं तो और क्या होगा ? टीकाकार भी "दुवे कवोया इत्यादि श्रूयमाणमेवार्थं केचन मन्यंते" ऐसा लिखकर हठाग्रहियों के अर्थ की उपेक्षा कर देते हैं। और शास्त्र सम्मत जो उनको इष्ट अर्थ है, उसको विशद व्याख्या कर रहे हैं, यथा–अन्ये त्वाहुः कपोतकः पक्षिविशेषस्तद्वत् ये फले वर्ण साधर्म्यात् ते कपोते कूष्माण्डे कपोतके ते च ते शरीर वनस्पतिदेहत्वात्, कपोतक शरीरे, अथवा कपोतक इव धूसरवर्ण साधर्म्यादेव कपोतक शरीरे, कूष्माण्डफले एव उपसंस्कृते तेहिं नो अट्ठोत्ति बहुपापत्वात्।

अर्थात् कपोत (कबूतर) पक्षी विशेष का नाम है। उसके शरीर का जो वर्ण है, उस वर्णवाला जो फल, वह भी कपोत कहा जाता है। अतएव कबूतर के रंग के जो दो कूष्मांड (कोहला) के

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

फल हैं, उनको हमारे लिये बनाये हैं उसको नहीं लाना, ऐसा लिख-कर "मज्जारकडे कुक्कुडमंसे तमाहराहि, एएणं अट्ठो" इसका अर्थ करते हैं मार्जारो वायुविशेषस्तस्योपशमनाय कृतम् सहमतम् किं मार्जारकृतम्। अन्येत्वाहुः मार्जारो विडालिकाभिधानो वनस्पति विशेषस्तेन कृतं भावितं यत्तत्तथा किन्तत् ? इत्याह कुक्कुटकमांस-कम् बीजपूरकं कटाहम्, आहराहि निर्वद्यत्वात् अर्थात् मार्जार नामका कोई वायु विशेष है, उसकी शान्ति के लिये अथवा मार्जार याने बिलारीकन्द नामक औषध, उससे संस्कार किया हुवा जो कुक्कुटमांस अर्थात् बिजौरापाक उसको लाओ क्यों कि वह निर्दोष है।

इस स्थल पर टीकाकार भी शाकाहार ही सिद्ध करते हैं। आम्नाय परम्परा, प्ररूपणा कोष और वैद्यक ग्रंथ भी शाक अर्थ बतला रहे हैं। फिर "मुरारेस्तृतीयः पन्थाः" इस न्याय से कोशाम्बीजो और उनके सहपाठियों को मांसाहार अर्थ अपनी जातीय प्रथा और व्यक्तिगत मान्यता के आधार से ही मिला होगा।

पूर्वाचार्यों ने औषधि के नाम—आकृति, गुण, वीर्य, देश, वर्ण आदि के आधार से रक्खे हैं। वही परम्परा आज तक चली आ रही है। आकृति प्रधान वनस्पति "काकजंघा" यह कौवेकी जंघा के आकार की होती है, देखिये भाव प्रकाश पृष्ट २२७ श्लोक २३३। गुण प्रधान वनस्पति मर्कटी का स्पर्श होते ही शरीर में इतनी खाज उत्पन्न होती है कि मनुष्य बन्दर के समान नाचने लगता है, अतः इसका नाम मर्कटी। भाव प्रकाश पृष्ट २०५ श्लोक १२२ वीर्य प्रधान वनस्पति "अमृता" (हरीतकी) इसमें इतना गुण है कि शास्त्रोक्त विधि के अनुसार सेवन करने से मनुष्य अजर अमर अर्थात् चिरायु जरा पलित रहित हो जाता है, अतः

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

इसका नाम अमृता है। भाव प्रकाश पृष्ट १३५ श्लोक ६ देशप्रधान वनस्पति " मागधी " को पिप्पली कहते हैं। यह मगध देश में बहुत पैदा होती है और सब देशों से यहां को पिप्पली श्रेष्ठ होती है, इसलिये इसका नाम दिया मागधी। पृष्ट १४० श्लोक ५२ भाव प्रकाश वर्ण प्रधान वनस्पति " मण्डूकी " यह मेंढक के वर्ण के समान होती है इसलिये इसका नाम मण्डू की है।

इसी तरह वर्ण सादृश्य लेकर कपोत से कूष्माण्ड, और कुक्कुट से बिजौरा आचार्य लोग कहते चले आते हैं—गुरुग्रंथि····। ऐसे स्थलों पर सद्गुरु के सिवाय अर्थ प्राप्ति नहीं होती है यह बात आक्षेपी लोगों के ध्यान में रखने लायक है। सभी आचार्य अपने ग्रंथों में प्रायः ग्रंथि रखते ही हैं। देखिये—श्री हर्ष की उक्ति, नैषध के २२ वे सर्ग में:—

ग्रंथे ग्रंथिरिह क्वचित्क्वचिदपि न्यासि प्रयत्नान्मया,
प्राज्ञ मन्यमनाहठेन पठिती मास्मिन् खलः खेसतु।
श्रद्धाराध्यगुरुस्थली कृतदृढग्रंथिः समासादयः,
त्वेतत्काव्यरसोर्मिमज्जनसुखव्यासज्जनं सज्जनः ॥३॥

अर्थात् मैंने इस ग्रंथ में प्रयत्न पूर्वक कहीं कहीं पर ग्रंथि रख दी है, क्यों कि पंडितमानी खल लोग ऐसा न समझें कि मैंने हठेन अर्थात् अपनी ही बुद्धि बल से इस ग्रंथ का पठन कर लिया, गुरुओं की आवश्यकता नहीं ली। इसलिये सज्जन लोग श्रद्धापूर्वक अर्थात् गुरु में देवता बुद्धि रखकर उनकी आराधना करके उनकी कृपा व शुभाशीर्वाद से दृढग्रंथियों को शिथिल करने के बाद इस काव्य रस लहरी में अवगाहन से जो सुख होता है, उसको प्राप्त करें। सारांश यह है कि गुरु परम्परा के बिना एक भी पद का अर्थ बराबर समझ में नहीं आ सकता है, इसलिये गुरु परंपरा से

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

ही अध्ययन करना चाहिये अतएव शास्त्रों का, आचार्यों का, गुरु जनों का यह सतत उपदेश होता है कि—

"यश्चेदं गुरुपरंपरयाधीते, स सततं सुखी भवतीति"

अर्थात् गुरुगम से जो शास्त्र का अध्ययन करता है, वह हमेशा सुखी होता है। उसके साथ ही और भी एक बात ध्यान में रखनी चाहिये कि शास्त्रों में तथा काव्यों में ही क्या ? परंतु साधारण बोल चाल में भी शब्द गूढ, अर्थ गूढ और शब्दार्थ गूढ भाव गूढ, तात्पर्य गूढ ऐसे अनेक प्रकार के श्लोक, सूत्र वाक्य आया करते हैं। वहां बहुत ही विवेक के साथ अर्थ किया जाता है। जरासा भी पैर फिसल गया कि अनभिज्ञ को पदवी सिरपर सवार ही है। एक साधारण नीति के श्लोक का उदाहरण देते हैं— बुद्धिमान को अपना समय किस प्रकार बिताना चाहिये ? इसके लिये नीतिकार उपदेश दे रहे हैं कि:—

प्रातर्द्यूत प्रसंगेन, मध्याह्ने स्त्रीप्रसंगतः।
रात्रौ चौरप्रसंगेन, कालो गच्छति धीमताम् ॥१॥

इस श्लोक का श्रूयमाण अर्थ कोशाम्बीजी और उनके सहोदरों के मत से यही होगा कि प्रातःकाल में जूवा खेलकर और मध्याह्न काल में स्त्रियों के साथ काम क्रीडा सेवन कर और रात्रि के समय चोरों में मिलकर चोरी आदि के द्वारा बुद्धिमान जीव अपना समय बिताता है।

अब विचार कीजिये कि जुवारी, जार और चोरों के लिये कितना सुन्दर प्रमाण है ?

उन लोगों के लिये एकदम आज्ञा ही मिल गई। परन्तु विवेकी जीव विचार करेंगे कि इस श्लोक में धीमताम् शब्द पड़ा है,

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

को बुद्धिमानों के लिये प्रचलित-श्रूयमाण अर्थ कदापि नहीं लागू होगा। अतः इसका कोई दूसरा ही अर्थ होना चाहिये, जो बुद्धिमानों में लागू हो सके। अतः तात्पर्य से अर्थ लगाकर इस तरह श्लोक का समन्वय करना पड़ता है कि प्रातःकाल में द्यूत प्रसंग अर्थात् जिस ग्रंथ में जूवा खेलने का दुष्परिणाम बताया गया ऐसे ग्रन्थ नल चरित्र आदि पढ़ना चाहिये, जिससे अपना चित्त व्यसनों को तरफ न झुके। एवं मध्याह्न स्त्री प्रसंगतः = अर्थात् मध्याह्न काल में स्त्रियों के फन्दे में पड़ने के अनिष्ट परिणाम जिसमें बताया गया है, उन ग्रंथों को अर्थात् रामायण आदि को पढना चाहिये, जिससे रावण के सत्यानाश की तरफ ध्यान देकर अपना चित्त पर स्त्री में आसक्त न हो! तथा "रात्रौ चौर प्रसंगेन" इसका अर्थ यह होता है कि रात्रि में चोर अर्थात् माखन चोर श्री कृष्ण वासुदेव का चरित्र पढ़ना चाहिये। उनका चरित्र पढने से परोपकार इन्द्रिय निग्रह आदि के उदाहरण मिलते हैं। इस तरह विद्वान अपने समय को बिताते हैं।

इस प्रकार विवेक के साथ पक्षपात रहित सत्यान्वेषण को बुद्धि से जैन सूत्रों का समन्वय करें, तो कहीं पर भी कुछ भ्रम नहीं है। हठाग्रही, परछिद्रान्वेषी, दुर्विदग्धों के लिये तो "शंकास्थान सहस्राणि, मूर्खाणां तु पदे पदे" ऐसा पहले ही नीतिज्ञों ने लिख दिया है। यह लेख तो समाप्त जल्दी नहीं हो रहा है-अभी बहुत कुछ लिखना बाकी रह जाता है परंतु अधिक बढाने में भी कुछ सार नहीं है। समझदार के लिये इतना ही काफी है। अब सिर्फ कोशांबीजी से एक मन्तव्य पर दिग्दर्शन कराकर लेखनी को अवकाश देता हूँ। कोशांबीजी स्वलिखित भगवान् बुद्ध नामक पुस्तक के उत्तरार्द्ध में पृष्ट १०६ पंक्ति १५ में लिखते हैं कि "जैन लोग पृथ्वीकाय, अप्काय, वायुकाय तेउकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय के किसी एक जीव की हिंसा में पाप मानते हैं, परंतु

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

जैन श्रावक गृहस्थ खेती करते हैं, और अन्नको पकाते हैं, इनमें तो सभी प्रकार के प्राणियों की हिंसा होती है और जैन साधु उनके घर से भिक्षा लेते ही है फिर मांस लेने में हरकत कौनसी है ? इत्यादि" इस दलील ने तो कोशाम्बीजी का आखिरी पाण्डित्य प्रगट कर दिया इतनी अवस्था तक हिंसा अहिंसा शब्दों का अर्थ उनकी समझ में नहीं आया और जैन धर्म के ऊपर आक्षेप करने के लिये लेखनी उठाली यह कितना भारी दुस्साहस है ? पहले कोशाम्बीजी हिंसा का स्वरूप समझने के लिये इस श्लोक का अभ्यास करें यथा—

पंचेन्द्रियाणि त्रिविधं बलंच, उच्छासनिःश्वासमथान्यदायुः।
प्राणा दशैते भगवद्भिरुक्ता स्तेषां वियोगीकरणं तु हिंसा ॥

अर्थात् पांच इन्द्रिय, तीन बल अर्थात् मनोबल प्राण, और वचन बलप्राण, काय बलप्राण. तथा उच्छ्वास निःश्वास और आयु ये दश प्राण जैन शास्त्र में माने गये हैं, इन दश प्राणों से जीवको अलग करना हिंसा कहलाती है वह हिंसा दो प्रकार की होती है। (१) मुख्य हिंसा और (२) गौणहिंसा। पंचेंद्रिय जीवों का घात करना मुख्य हिंसा है और एकन्द्रिय जीवों का घात करना गौण हिंसा जो मुख्य और गौण दोनों हिंसाओं से निवृत होता है वह सर्व विरत साधु-श्रमण कहलाता है। और जो मुख्य हिंसा से निवृत होकर गौण हिंसा में मर्यादा करता है उसे देशविरत श्रावक कहते हैं।

पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति एकेन्द्रिय जीव कहलाते हैं, इनमें चार बल प्राण होते हैं। (१) काय (२) स्पर्शेंद्रिय (३) श्वासोच्छ्वास और (४) था आयुष्य, अतः एकेन्द्रिय जाव के घात से ४ बल प्राणों से आत्मा का वियोग होता है। द्वीन्द्रिय

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

जीवों के घात से पहले के चार और ५ वां रसेन्द्रिय और ६ ठा वचन इन छहों बल प्राणों से जीव अलग होता है। त्रीन्द्रिय जीवों के घात से छः पहले के और ७ वां घ्राणेन्द्रिय ऐसे सात बल प्राणों से जीव का वियोग होता है। चतुरिन्द्रिय के घात से पहले के ७ और आठवां चक्षुरिन्द्रिय ऐसे ८ बल प्राणों से जीव का वियोग होता है। और पंचेन्द्रिय के विघात से ८ पहले के और ९ वां श्रोत्रेन्द्रिय तथा १० वां मन ऐसे समुच्चय १० प्राणों से जीव का वियोग होता है। अतः जिन जीवों में न्यून वा अधिक प्राण पाये जाते हैं, उनके घात से उतने ही न्यून अथवा अधिक परिमाण में हिंसा का पाप लगता है। ऐसा जैन धर्म का मंतव्य है। और नीतिज्ञों का महर्षियों का ऐसा उपदेश है कि—

शरीरं धर्मसंयुक्तं रक्षणीयं प्रयत्नतः ।
शरीराज्जायते धर्मो यथा बीजात्सदंकुरः ॥

अर्थात् जिस तरह लखपति करोड़ पति के सामने एक पैसे वाला धनी धनवान नहीं कहलाता उसी तरह पंचेन्द्रिय संज्ञी जीवों के सामने चतुरिन्द्रिय जीव संज्ञी नहीं कहे जाते द्वीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवों के घात करने वाले हिंसकों की अपेक्षा उदासीनता पूर्वक शरीर संरक्षणार्थ एकेन्द्रिय का घात करने वाला (गृहस्थ) अहिंसक है, उनके यहां से आहार लेने में कुछ हरकत नहीं है।

सचित्त पृथ्वी; सचित्त पानी आदि का सेवन करने वाले और मांस का सेवन करने वाले यदि कोशांबीजी के मत से बराबरी में आ गये तो कोशांबीजी को गुन्हेगार समझना चाहिये। क्योंकि यह आँख से दखी हुई बात है कि बौद्ध साधु अपनी इच्छा के अनुसार कच्चे पानी को अपने काम में

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

लाता हैं, और कच्चे पानी के एक बूंद में असंख्याता जीव आर्य अनार्य सभी लोग एक मतसे स्वीकार कर चुके हैं। तो जब एक मनुष्य का घात करने से दूसरे को सजा होती है, फिर जो अनेक जीवों का रोज घात कर रहे हैं उसको सजा क्यों नहीं ? क्योंकि उसकी दृष्टि में सभी जीव-घात बराबर है।

जैन दृष्टि में तो खास पंचेन्द्रियों में भी सभी जीव बराबर नहीं हैं, राजा का न्याय भी ऐसा ही देखा जाता है कि यदि किसी ने बकरी या भैंस को मार डाला तो रुपये का दण्ड दिया जाता है और यदि मनुष्य को मारा तो शूली और फांसी की सजा दी जाती है। कोशांबीजी ने तो सभी को बराबरी के दर्जे में लाया है। यह उनकी कैसी विचित्र समझ है ?

इस लेख में जैन धर्म की प्ररूपणा, सुसंगति एवं गुरुपरम्परा से आये हुए शुद्ध अर्थ का दिग्दर्शन कराया गया है। इसका निष्पक्ष भाव से अनुशीलन करके वस्तु के यथार्थ स्वरूप को समझा जाय, यह वांछनीय है। आशा है, इससे अहिंसा के परम उपदेष्टा एवं परिपालक भगवान महावीर पर लगाये गये मांसाहार विषयक मिथ्या आक्षेप का निराकरण होगा और विद्वद्गण हंसवत् विशुद्ध अर्थ को स्वीकार करेंगे।

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com